जैन शासन

पं० नरेन्द्रकुमार न्यायतीर्थ

जीयात् जैनं शासनमनादिनिधनं सुवन्द्यमनवद्यम् ।
यदपि च कुमतारातीन्, अदयं धूमध्वजोपमं दहति ।।

काम क्रोधादिषड्रिपून् जयति इति जिनः । निजं वेत्ति इति जिनः ।

जो काम-क्रोध-आदि षट् रिपुओं को जीतता है उसे 'जिन' कहते हैं। अथवा जो निज शुद्ध कारण परमात्मा को जानता है, वेदन करता है, अनुभवन करता है, उसे जिन कहते हैं। बिना आत्मज्ञ हुए सर्वज्ञ नहीं बन सकता। संपूर्ण जगत् (विश्व) आत्म और अनात्म-स्वरूप है। जिसने आत्मा और अनात्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया, वही अनात्मा को त्याग कर आत्मा में अविचल-स्थिर हो सकता है। आत्मा में स्थिर होने वाला आत्मा ही परमात्मा कहलाता है।

परमात्मा या सिद्ध बनना नहीं पड़ता। स्वतःसिद्ध भगवान् आत्मा को जानकर उसमें लीन होना, आत्मा का आत्म-रूप रहना इसी को सिद्ध-परमात्मा कहते हैं। कर्म के अभाव से आत्मा परमात्मा बनता है, यह कहना व्यवहारनय कथन है—उपचार-कथन है।

मल के अभाव से दर्पण स्वच्छ हुआ, ऐसा कहना लोक-व्यवहार है। वास्तव में मल के अभाव से दर्पण में स्वच्छता बाद में कहीं बाहर से आती है, ऐसा नहीं है। स्वच्छता, मल के सद्भाव में भी दर्पण में ही थी। स्वच्छता दर्पण का स्वभाव है। मल के सद्भाव में वह अप्रकट था, वही मल के अभाव में प्रकट हुआ। मल के सद्भाव ने दर्पण की स्वच्छता नष्ट नहीं की थी तथा मल के अभाव में दर्पण में स्वच्छता बाद में कहीं बाहर से लायी, यह बात नहीं है।

उसी प्रकार कर्म के अभाव से आत्मा सिद्ध परमात्मा होता है, ऐसा व्यवहारशास्त्र में व्यवहारनय से कथन किया जाता है। परंतु कर्म के अभाव से आत्मा में परमात्मपना या सिद्धपना बाद में कहीं बाहर से आता है—ऐसा नहीं है। जितना मूल स्वतः सिद्ध बन-बना हुआ आत्मा है उतना ही शेष रहना, जो अनात्मा-रूप उपाधि थी, उसका अभाव होना—इसी को सिद्ध-परमात्मा कहते हैं। उपाधि के सद्भाव में भी मूल स्वतः सिद्ध बन-बना हुआ जितना आत्मा है उतना ही था। उपाधि के अभाव में भी उतना ही शेष रहा।

संसार अवस्था	=	(आत्मा + उपाधि)
मोक्ष	=	(संसार) — (उपाधि)
	=	(आत्मा + उपाधि) — उपाधि
मोक्ष	=	आत्मा

इस बीजगणित के समीकरण सिद्धान्त से मूल स्वतःसिद्ध आत्मा ही सिद्ध परमात्मा व्यवहार में कहा जाता है।

संसार में जो १४ गुणस्थान रूप, १४ मार्गणारूप, १४ जीव समास रूप उपाधि है वह सब अचेतन-अनात्मा है। इन उपाधियों से अत्यन्त भिन्न-पृथक्-विभक्त मेरा स्वतःसिद्ध, शुद्ध-बुद्ध, त्रिकाल-ध्रुव ऐसा जो कारणपरमात्मा है, वही मैं हूं, वही मुझे उपादेय, आश्रय करने योग्य है, वही मंगल है, वही लोकोत्तम है, वही शरण्य है। शेष सब अनात्मा है, हेय है, आश्रय करने योग्य नहीं है, शरण्य नहीं है। इस प्रकार स्व-पर का भेद-विज्ञान होने पर, शुद्ध उपयोग द्वारा अपने शुद्ध आत्मा का ही चेतन-वेदन-अनुभवन करना—यही आत्मा का अन्तिम ध्येय है। यही शाश्वत सुख का एकमेव मार्ग है, उपाय है।

यही मार्ग जिन्होंने स्वयं अपनाया, और अपने स्वानुभवपूर्ण शाश्वत सुख के मार्ग का (practical) प्रत्यक्ष कृति-वृत्ति-आचरण द्वारा ध्यानस्थ होकर मूकवृत्ति से जगत् के सब प्राणिमात्र को बतलाया—मार्गदर्शन किया, उन्हीं को जैन शासन में **'जिन'** कहा गया **है**। वीतराग सर्वज्ञ जिन भगवान् द्वारा बतलाया हुआ जो शासन, तत्त्व का यथार्थ उपदेश है, उसी को **'जैन शासन'** कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें सब प्राणि-मात्र को अपनी आत्मा का यथार्थ स्वरूप बतलाकर अपनी आत्मा में स्थिर होने का, संसार-पारतंत्र्य से मुक्त होकर—स्वाधीन—स्वतंत्र-शाश्वत सुखमय जीवन बिताने का मार्ग-दर्शन किया है। इसलिए यह जैन शासन किसी एक पंथ का या किसी धर्म-विशेष का, किसी जाति-विशेष का न होकर समस्त प्राणि-मात्र के हित का, कल्याण का मार्ग बतलाने वाला सार्वधर्म-शासन, आत्मधर्म शासन कहलाता है।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥ (आ० हरिभद्र कृत लोकतत्त्वनिर्णय, १/३८)

जैन शासन के प्रणेता भगवान् महावीर हैं, ऐसा जैन शासन का पक्षपात नहीं है। अन्य मत के प्रणेता कपिल, सौगत आदि हैं, उनके प्रति द्वेष-भाव भी नहीं है। नाम से कोई भी व्यक्ति हो, परन्तु जो सर्वज्ञ और वीतराग है, जिसका वचन युक्ति—आगम द्वारा बाधित नहीं है, प्रत्यक्ष प्रतीति द्वारा बाधित नहीं है, उसी का वचन कल्याणकारी मान कर स्वीकार करना चाहिए।

अन्य दर्शन के नेताओं ने अपने भक्तों को हमेशा अपने भक्त बने रहने का ही उपदेश दिया है—मेरी भक्ति करने वालों को मैं सुखी बना सकता हूं। तथा मेरी भक्ति न करने वालों को मैं यथोचित दण्ड दे सकता हूं—इस प्रकार अपने भक्तों को सदैव पराधीन रहने का ही उपदेश दिया है।

परन्तु जैन शासन सब प्राणि-मात्र को पराधीन—ईश्वराधीन न रहकर स्वाधीन—स्वतंत्र होने का उपदेश देता है। यही जैन शासन का एक अद्वितीय वैशिष्ट्य है। जैन शासन और अन्य शासन में यही एक विशेषता है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। पराधीन-परतंत्र नहीं है। प्रत्येक जीव को अपना स्वतंत्र अस्तित्व जीवन जीने का अधिकार है। प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन अपनी सामर्थ्य से करने में स्वतंत्र है। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय-सृष्टि की रचना करने में तथा संहार करने में सर्वथा स्वतन्त्र है, प्रभु है, समर्थ है, ईश्वर है। परतंत्र, पराधीन, अन्य ईश्वराधीन नहीं है। इस प्रकार स्वाधीनता—स्वतन्त्रता—का वस्तुसिद्धान्त जैन शासन बतलाता है।

दूसरे द्रव्य का स्वतंत्र अस्तित्व अपहरण कर अन्य वस्तु पर, चेतन-अचेतन वस्तु पर, अपना प्रभुत्व-स्वामित्व बलात् स्थापित करना, इसी का नाम '**हिंसा**' है। लोक-व्यवहार में प्राणियों के घात को हिंसा कहते हैं। परन्तु जैन शासन में रागद्वेष-मोहभाव को अपने ज्ञाता, द्रष्टा स्वभाव का घातक होने से हिंसा कहा गया है। अन्य वस्तु पर अपना स्वामित्व-प्रभुत्व स्थापन करना, अन्य वस्तु का स्वतन्त्र अस्तित्व अप-हरण करना, इसी को हिंसा कहा है। अहिंसा जैन शासन का प्राण है। अहिंसा का सर्वांग परिपालन होने के लिए सब अन्य वस्तुओं पर का ममत्व-भाव—स्वामित्व-बुद्धि—छोड़कर, सब बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर, नग्न दिगम्बर-अवस्था धारण करना जैन शासन का मुख्य सिद्धान्त माना गया है।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ॥
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयम्
भवानेवात्याक्षीत् न च विकृतवेषोपधिरतः॥ (बृ० स्वयम्भूस्तोत्र, २१/४)

अहिंसा—यह जगत् के सब प्राणियों का जगत्प्रसिद्ध परम ब्रह्म है। जहां अणुमात्र भी आरम्भ-परिग्रह है, अन्य वस्तु पर ममत्व-स्वामित्व-बुद्धि है, वहां पर अहिंसा का यथार्थ परिपालन नहीं बन सकता। इसलिए अहिंसा धर्म का सर्वांगपूर्ण पालन होने के लिए जैन शासन के नेताओं ने सब बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर नग्न दिगंबर अवस्था धारण कर सम्यक् चारित्र कोजैन शासन का साक्षात् स्वरूप बतलाया है।

जैन शासन में जैन शासन के नेता सर्वज्ञ भगवान् 'जिन' देव की मूर्ति आत्मध्यानस्थ, नग्न दिगंबर, वीतराग, परमशांत मुद्रा धारण करने वाली मानी गई है, तथा जैन शासन के उपदेशक गुरु-साधु-मुनि भी महाव्रतधारी, संयमी, नग्न दिगंबर ही पूज्य माने गये हैं। अहिंसा, अपरिग्रहवाद और अनेकान्तवाद—ये जैन शासन के प्रमुख सिद्धान्त माने गये हैं।

आत्मा स्वभाव से ज्ञाता-द्रष्टा है। अपने स्वभाव में अपना उपयोग स्थिर करना, इसीका नाम अहिंसा है। अपने स्वभाव को छोड़कर शरीर आदि अन्य परद्रव्य, और राग-द्वेष-मोह रूप परभाव, इनकी तरफ उपयोग लगाना, इसीका नाम हिंसा है। परद्रव्य में एकत्व बुद्धि, ममत्व-बुद्धि—इसी को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व ही महापाप है, आत्मा के स्वभाव का घातक है। परपदार्थ में ज्ञाता-द्रष्टाभाव न रखकर इष्ट-अनिष्ट बुद्धि रखना, पंचेंद्रियों के विषय में प्रवृत्ति करना, काम-क्रोध-मान-माया-लोभ इनमें प्रवृत्ति करना, राग-द्वेष-मोह रूप पर-भाव में प्रवृत्ति करना, इसीका नाम हिंसा है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, अपरिग्रह (पर वस्तु में परत्व-मूर्च्छा परिणाम) इस प्रकार पंच-पापों में प्रवृत्ति करना, यह सब आत्म-स्वभाव के घातक होने से हिंसा रूप कहे गए हैं। यह आत्मा का अधर्म है। अधर्म का त्याग कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में रहना, इसी का नाम अहिंसा परम धर्म है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानात् अन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्त्ताऽऽत्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥ (समयसार कलश, १७-६२)

आत्मा का लक्ष्य ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। आत्मा स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञान-दर्शन के बिना आत्मा अन्य कुछ भी क्रिया नहीं कर सकता। मैं पर का कुछ भला-बुरा कर सकता हूं—यह विपरीत मान्यता ही व्यवहारी-अज्ञानी लोगों का मोहरूप अज्ञानभाव है। ज्ञानी सहज वैरागी है। जहां समीचीन ज्ञान है वहां पंचेंद्रियों के विषय से सहज विरागता अवश्य होती है। जिसमें सहज विराग है वही ज्ञानी समयग्ज्ञानी कहलाता है। जहाँ ज्ञान होकर सहज विराग नहीं है, उस ज्ञान को ज्ञान न कहकर अज्ञान ही कहा है। समयसारकलश-३/११५ में वास्तविक 'ज्ञानी' को ज्ञानमय मात्र भाव वाला होने से निरास्रव ही बताया है।

जहां शास्त्रों का बहुत ज्ञान है, परन्तु जहां ज्ञान की ज्ञान में वृत्ति नहीं, स्थिरता नहीं, ज्ञान का निर्णय नहीं, ज्ञान की रुचि नहीं, ज्ञान की पंचेंद्रियों के विषय में वृत्ति है, पंचेंद्रिय-विषय से निवृत्ति-विरक्ति नहीं है, वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं है। ज्ञान को '**परिच्छेद**' कहा है। जहां आत्मा-अनात्मा का परिच्छेद—भेद-विज्ञान—नहीं है, ज्ञान होकर भी जहां विषयों में प्रवृत्ति पायी जाती है, वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं है। इस प्रकार निरास्रव ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान कहा है।

जिस प्रकार **ज्ञानपूर्वक वैराग्य** ही आत्मसिद्धि के लिए कार्यकारी होता है, उसी प्रकार **वैराग्य-पूरक ज्ञान** ही आत्मसिद्धि के लिए कारण होता है। 'ज्ञानमेव प्रत्याख्यानम्' ज्ञान का फल प्रत्याख्यान—विरागता कहा है। ज्ञान और विरागता—इनमें परस्पर अविनाभाव संबंध होता है। जहां ज्ञान है वहां विरागता अवश्य होती है। जहां विरागता है वहां ज्ञान अवश्य होता है। विरागता ज्ञानपूर्वक ही होनी चाहिए। वही सच्ची विरागता है। इसी प्रकार ज्ञान विरागतापूरक ही होना चाहिए।

जहां ज्ञान-चेतना है, ज्ञान की रुचि है वहां कर्मचेतना या कर्मफल-चेतना की रुचि नहीं रहती है। कर्मचेतना—कर्मफल-चेतना की रुचि अज्ञानमूलक होती है। ज्ञान और अज्ञान की रुचि एक साथ कदापि नहीं रह सकती। इसलिए अध्यात्मशास्त्र में अज्ञानी को ही रागी कहा है और ज्ञानी को विरागी कहा है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी सराग होकर भी उसके निर्मोही होने से, राग की रुचि न होने से, विरागी कहा है। जो विरागी होकर भी मोही है, राग की रुचि रखता है, कर्म-कर्मफल-चेतना को इष्ट-उपादेय मानता है, पुण्य और पुण्यफल को धर्म मानता है, उसको यथार्थ तत्त्वज्ञान न होने से अज्ञानी कहा है। करणानुयोग से भी उसका गुणस्थान मिथ्यात्व ही कहा है। ज्ञानचेतना यही आत्मा का शुद्ध उपयोगरूप परिणाम है। कर्मचेतना और कर्मफल-चेतना—यह आत्मा का अशुद्ध उपयोगरूप विभावपरिणाम है। मन-वचन-काय के अवलम्बन से आत्मप्रदेश की हलन-चलन रूप शुभ-अशुभ क्रिया करने के प्रति, तथा क्रिया का फल सुख-दुःख व उसका वेदन-अनुभवन करने के प्रति जो उपयोग की प्रवृत्ति है, उसको अशुद्ध चेतना कहते हैं। शुद्ध ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग की प्रवृत्ति को शुद्ध-चेतना या ज्ञान-चेतना कहते हैं।

ज्ञान-चेतना रूप शुद्ध चेतना करना, यह आत्मा का स्वभाव-परिणमन है। शुभ-अशुभ क्रियारूप—कर्म-कर्मफल-चेतनारूप अशुद्ध चेतना करना यह आत्मा का विभाव-परिणमन है। ज्ञान-चेतनारूप स्वभावपरिणमन करना, इसी का नाम अहिंसा है। कर्म-कर्मफल-चेतनारूप अशुद्ध चेतनारूप विभाव-परिणमन करना ज्ञानचेतना का घातक होने से हिंसा है।

(१) ज्ञानचेतना की रुचि—इसीका नाम वीतराग सम्यग्दर्शन है।

(२) ज्ञानचेतना की प्रतीति—इसी का नाम वीतराग सम्यग्ज्ञान है।

(३) ज्ञानचेतना रूप-परिणति, ज्ञानचेतना की अनुभूति—इसीका नाम वीतराग सम्यक्-चारित्र है। इसीका नाम अभेद ज्ञानमय या वीतराग रत्नत्रय है।

(१) कर्म-कर्मफल-चेतना की रुचि—इसीका नाम मिथ्या-दर्शन है।

(२) कर्म-कर्मफल चेतना की रुचिपूर्वक प्रतीति—इसीका नाम मिथ्याज्ञान है।

(३) कर्म-कर्मफल चेतना रूप रुचिपूर्वक परिणति, अनुभूति—इसीका नाम मिथ्याचारित्र है।

परन्तु जहां—(१) ज्ञानचेतना की रुचिरूप वीतराग सम्यग्दर्शन तो विद्यमान है, परन्तु यदि कदाचित् ज्ञानचेतना रूप वीतराग परिणति करने में असमर्थता है, वहां भाव योग उपयोग ज्ञानधारा और द्रव्ययोग उपयोग रूप कर्मधारा-ऐसी मिश्र परिणति रहती है। उसीको सरागसम्यक्त्व और सरागचारित्र कहा जाता है। इस सरागसम्यक्त्व और सरागचारित्र अवस्था में व्रत-समिति पावनरूप कर्म-कर्मफल चेतनारूप-अशुद्ध चेतनारूप-परिणति रहती है, तथापि उसमें सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की हेयबुद्धि रहती है, रुचिपूर्वक उपादेय बुद्धि या स्वामित्व-बुद्धि—कर्तृत्व बुद्धि—नहीं रहती है। इसलिए वह अशुद्धचेतना रूप परिणति होकर भी उसके साथ ज्ञानचेतना की रुचिपूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना रहती है, इसलिए वहां द्रव्ययोगरूप से सरागरूप शुभोपयोग और भावयोगरूप से वीतराग रूप शुद्धोपयोग—इस प्रकार मिश्ररूप परिणाम होता है। जितने अंश में सरागरूप शुभोपयोग है, उतने अंश में आस्रव-बंध होता है और जितने अंश में वीतराग रूप शुद्धोपयोग है, उतने अंश में संवरपूर्वक निर्जरा होती है। इसलिए वह अशुद्ध चेतना ज्ञानस्वभाव की तावत्काल-बाधक होने पर भी उसके साथ वीतरागरूप ज्ञानचेतना की भावना रहने से, आगे वह नियम से अशुद्ध चेतना से निवृत्त होकर ज्ञानचेतना रूप परिणति करने से, परम्परा से मोक्षमार्ग की साधक कही गई है।

मिथ्यादृष्टि अज्ञानी को अशुद्धचेतना के प्रति रुचि-राग होने से रागी कहकर बन्धक कहा गया है।

सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी को तावत्काल अशुद्धचेतनारूप द्रव्ययोगरूप परिणति होने से तावत्काल अल्पस्थिति-अनुभागरूप आस्रव-बंध होकर भी ज्ञानचेतना की भावयोग रूप रुचि-भावना निरन्तर होने से, तथा उसके कारण संवर-निर्जरा होने से, उसको अबंधक कहकर मोक्ष-मार्ग का परम्परा-साधक ही कहा है। इसलिए ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जबतक जघन्य अवस्था में, सराग अवस्था में है, तब तक वह यथापदवी व्रत-संयमरूप आवश्यक कर्म कर्त्तव्यरूप समझकर उसका निर्दोष-निरतिचार पालन करता है। प्रमादी-स्वच्छन्दी होकर निरर्गल-असंयमरूप प्रवृत्ति का कदापि आदर नहीं करता है। वही ज्ञानी अशुद्धचेतना रूप शुभोपयोगरूप प्रवृत्ति से भी अन्त में निवृत्त होकर अपनी ज्ञानचेतनारूप शुद्धोपयोगरूप परिणति में अविचल स्थिर होता है। इसलिए वीतराग शुद्धोपयोगरूप ज्ञानचेतनारूप परिणति को ही मोक्षमार्ग में सर्वथा उपादेय, इष्ट माना गया है। ज्ञानी उसीकी निरन्तर भावना-आराधना करता है।

इस प्रकार जैन शासन का मुख्य अंग अहिंसा और अपरिग्रहवाद माना गया है।

उसी प्रकार स्याद्वाद तथा अनेकान्तवाद भी जैन शासन का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक—परस्पर-विरोधी उभयधर्मात्मक—सामान्य-विशेष धर्मात्मक—द्रव्य-गुण-पर्याय धर्मात्मक है। इसलिए वस्तु-निरीक्षण तथा वस्तु का परीक्षण, इस दृष्टि से वस्तु का यथार्थ ज्ञान, यथार्थ निर्णय कराने वाले हेयोपादेय विज्ञान के रूप में जैनशासन का अनेकान्तवाद बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

वस्तु का सामान्य धर्म-द्रव्यधर्म-गुणधर्म यह सदा ध्रुव, सत्, नित्य, एकरूप और अभेद-अद्वैत रूप रहता है, तथा विशेष धर्म-पर्याय धर्म असत्—(उत्पाद-व्ययरूप), अनित्य, अनेकरूप, भेदरूप, द्वैतरूप होते हैं। वस्तु के पर्याय धर्म का आश्रय कर्मबंध का—संसार-दुःख का कारण है, यह जानकर पर्यायदृष्टि—बहिरात्मदृष्टि—मिथ्यादृष्टि का सर्वथा त्याग करना चाहिए, और वस्तु का सामान्यधर्म—द्रव्यधर्म-गुणधर्म, जो सदा ध्रुवरूप है, का आश्रय संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण है, अतः उसीको सर्वथा उपादेय मानकर उसीका चिन्तन-मनन-ध्यान करते हुए उसीमें अविचल स्थिर होना—यही मोक्ष का साक्षात् मार्ग है। शाश्वत सुख-शान्ति का यही उपाय है। **न्यायशास्त्र के अनेकान्त** में एक ही वस्तु में परस्पर-विरोधी सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, तत्-अतत् धर्मों का **अस्तित्व** अविरोध रूप से अविनाभाव रूप से सिद्ध करना—इतना ही प्रयोजन रहता है।

परन्तु **अध्यात्मशास्त्र के अनेकान्त में—वस्तु का परीक्षण** यह मुख्य उद्देश्य होता है। वहां वस्तु का द्रव्यधर्म-गुणधर्म ही एकान्त से (सर्वथा) उपादेय आश्रय करने योग्य है, और वस्तु का पर्यायधर्म एकान्त से (सर्वथा) उपादेय—आश्रय करने योग्य नहीं है, हेय है। इस प्रकार जो दो सम्यक्-एकान्तों का समुदाय हैं, उसको अध्यात्म-दृष्टि से अनेकान्त कहा है।

अपने शुद्ध आत्मस्वभाव की रुचि, प्रतीति—अनुभूति-वृत्ति रूप निश्चय-रत्नत्रय ही संवर-निर्जरा का कारण होने से निश्चय मोक्षमार्ग कहा गया है।

जब तक निश्चय मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती, तब तक जघन्य अवस्था में आत्मस्वभाव के साधक तथा सिद्ध पंचपरमेष्ठी की भक्ति, व्रत-संयमरूप आचरणरूप शुभोपयोग प्रवृत्ति को व्यवहार धर्म या व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। क्योंकि वह संवर-निर्जरा का कारण न होकर आस्रव-बंध का ही कारण है। तथापि व्यवहार मार्ग में हेयबुद्धि और निश्चय मोक्षमार्ग में उपादेय बुद्धि, आत्मस्वभाव की रुचि-भावना—इसे भी उस व्यवहारधर्म के साथ होने से परम्परा से मोक्षमार्ग कहा गया है। इस प्रकार जैन शासन का अनेकान्त शासन सदा जयवन्त रहे।

जैनशासन को ही श्रमण संस्कृति कहते हैं और उसे जगद्-बन्धु कहा गया है।

जिनधर्मं जगद्बन्धुं अनुबद्धुमपत्यवत्।
यतीन् जनयितुं यस्येत् तथोत्कर्षयितुं गुणैः॥ (सागार धर्मामृत, २/७)

जैन शासन जगत् के प्राणिमात्र को आत्मकल्याण का मार्ग बतलाने वाला परमकल्याणकारी मित्र है। उसकी परिपाटी चलते रहने के लिए वीतराग विज्ञान का साक्षात् आदर्शस्वरूप श्रमणधर्मः मुनिधर्म निर्माण कर उनमें वीतराग विज्ञान की, रत्नमयधर्म की वृद्धि करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। वीतराग विज्ञानस्वरूप श्रमणधर्म-मुनिधर्म ही जैन शासन का मूर्तिमन्त साक्षात् आचरित स्वरूप है।

विजयतां जैनं शासनम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org